औरत और धर्म एक विश्लेषण

श्री लता स्वामीनाथन

आटा गूंधने के लिए कोई औरत पूजा-पाठ नहीं करती। न कपड़े धोने, आंगन लीपने, अचार बनाने, गोबर बीनने या चूल्हा जलाने के पहले पूजा करती है। चाहे वह कितनी भी पिछड़ी या अनपढ़ हो, या धार्मिक विचारों की हो। क्यों नहीं करती? क्योंकि यह सारे काम औरत के बस के हैं। यह काम वह रोज़ करती है इसलिए इन्हें करने में उसे कोई डर, शक या बहम नहीं होता। इन्हें करना वह अच्छी तरह जानती है। अगर गलती भी करती है तो वह जानती है कि इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। न प्रार्थना करने, न मंदिर जाने की जरूरत है।

औरत ऐसे बहुत से काम करती है जिन पर उसका पूरा नियंत्रण है और जिनके बारे में वह खुद फैसला करती है। वह समझती है कि अगर रोटी जल गई है तो या तो आंच ज्यादा तेज़ है या रोटी तवे पर ज्यादा देर रह गई। यह वह हर्गिज़ नहीं समझती कि भगवान ने उसकी रोटी जला दी या उसकी किस्मत ही फूटी है। न ही यह सोचती है कि इसके लिए सोमवार का व्रत रखना होगा या मंदिर में प्रसाद चढ़ाना होगा।

पर शादी के लिए, अच्छे पति के लिए, बच्चों के लिए, अच्छे सास-ससुर के लिए, पति की लंबी उम्र के लिए औरत हर क्षण प्रार्थना, पूजा, उपवास, व्रत, मंदिर-दर्शन आदि करती रहती है।

इस बारे में दो राय नहीं हो सकतीं कि जिनके बारे में इंसान को पूरा ज्ञान है और जिन परिस्थितियों पर उसका नियंत्रण है वहां वह डरता नहीं है। वहां धर्म की ज़रूरत नहीं पड़ती है। जहां भविष्य

अनिश्चित है वहां सदा डर बना रहता है। ऐसे समाजों में जहां वैज्ञानिक समझ है और जीने की बुनियादी ज़रूरतें सहज ही मिली हुई हैं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, रोज़गार, स्वास्थ्य सेवाएं आदि वहां धार्मिक प्रवृति कम होती जाती है। जहां इन पर इंसानी नियंत्रण बहुत कम होता है, वैज्ञानिक समझ की कमी है, वहां भविष्य असुरक्षित रहता है और वहां धर्म का नागपाश इंसान को जकड़े रहता है।

अज्ञानता का अंधेरा

धर्म अज्ञानता के अंधेरे में पलता है। ज्ञान की रोशनी में कमज़ोर पड़ जाता है। धर्म को मज़बूत बनाने के लिए भय, शक और अज्ञानता की उपजाऊ धरती चाहिए। हमारे गरीब व सामंती समाज में धर्म की सबसे उपजाऊ भूमि हमारे स्त्री समाज में मिलती है। उन्हें ऐसी मानसिक व शारीरिक गुलामी में रखा जाता है जहां उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। उनको अपनी ज़िंदगी पर कोई हक़ या नियंत्रण नहीं मिलता। जन्म से मरने तक वह पुरुष पर निर्भर है। बचपन से ही उसे इतना दबाया या कुचला जाता है कि वह अपने हक़ों के बारे न तो सोच पाए, न ही कोई आवाज़ उठा पाए।

बचपन से औरत को ऐसे ढाला जाता है कि उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसकी ज़िंदगी का मक़सद है पत्नी और फिर मां बनना। मनुस्मृति के हिसाब से औरत के लिए मोक्ष पाने का एक ही रास्ता है, वह है पति की सेवा करना। वैसे मनुस्मृति में यह भी लिखा है कि हरिजनों के लिए मोक्ष का रास्ता है सवर्णों की सेवा करना। मनु कोई भगवान नहीं थे, न ही मनुस्मृति कोई देववाणी।

धर्म के ज़रिए से पुरुष ने स्त्री को हर सामाजिक दंड दिया। पति पहले मर जाए तो उसकी ज़िम्मेवार पत्नी है। वह कुलक्षिणी है। विधवा की शक्ल तक देखना अपशगुनी है। विधुर की शक्ल देखने में अपशगुनी नहीं है। बच्चे न पैदा हों तो औरत का क़सूर, बच्चियां ही पैदा हों तो औरत का क़सूर। विज्ञान के अनुसार दोष दोनों का ही हो सकता है। बच्चियों का पैदा होना तो पुरुष के बीज से तय होता है। पुरुष शराबी, जुआरी, बेकार या बीमार है तो भी औरत का दोष।

औरत का बलात्कार होता है तो कलंकिनी उसे ही ठहराया जाता है। इंद्र गौतम ऋषि की पत्नी के साथ संभोग करते हैं तो सज़ा की भागी गौतम की पत्नी होती है। उसे गौतम श्राप देकर पत्थर बना देते हैं। क्या खूब है पुरुषों का न्याय। यही 'न्याय' व दोहरी नीतियां आज धर्म के नाम पर हमारे समाज में प्रचलित हैं।

बचपन से गलत सीख

राजस्थान में औरतों को, खासकर राजपूत औरतों को, बचपन से ही सती की महिमा व पूजा सिखाई जाती है। उनके लिए किसी और तरह की सोच असंभव है। पति संबंधी तरह-तरह के व्रत उपवास रखना सिखाया जाता है। यदि पति में कोई दोष है या वह मर जाता है तो औरत को दोष दिया जाता है कि व्रत-उपवास ठीक से नहीं रखा होगा। पुरुष के दिमाग़ में यह बात नहीं बैठाई जाती कि पत्नी के स्वास्थ्य या लंबी उम्र के लिए प्रार्थना करो, व्रत, उपवास, पूजा करो।

औरत यह सब ढोंग करती क्यों है? इसलिए कि उसका अपने मन, शरीर व पूरे जीवन पर कोई अधिकार नहीं है। कैसे स्कूल में पढ़ेगी, कहां तक पढ़ेगी, कब शादी करेगी, कब और कितने बच्चे

पैदा करेगी, बच्चों का पालन पोषण कैसे होगा इनमें से किसी पर भी फैसला उसके हाथ में नहीं होता। उसे इन पर अपने मन की बात खुल कर कहने तक का हक़ नहीं होता।

नतीजा होता है औरत की पूरी जिंदगी डर, भय व अनिश्चितता से घिरी रहती है। दुख और डर से भागने का एक ही तरीका उसके सामने रहता है। वह है पूजा-पाठ, प्रार्थना।

औरत की अपनी पहचान को पूरी तरह दबा दिया गया है। सिर्फ फलां की मां, फलां की पत्नी, फलां की सास ही होती है। सामाजिक स्तर पर हर हक़ से वंचित है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक नीतियों या फैसलों से दूर, उत्पादक होते हुए भी उत्पादन के साधनों पर कोई स्वामित्व नहीं मिलता। उसकी वैयक्तिक और सामाजिक गुलामी को वैधानिक स्वीकृति धर्म से मिली हुई है।

यह सिर्फ हिंदू धर्म की बीमारी नहीं है। हर धर्म—ईसाई, इस्लाम में भी ऐसा ही होता है। जन जातियों में भी जहां संगठित धर्म नहीं होता यह सब लक्षण देखे जा सकते हैं।

औरतों में क्षमता कम नहीं

औरतों में वे सब गुण और क्षमताएं हैं जो मर्दों में हैं। जहां बराबरी के मौके व फैलने की जगह मिलती है औरतें उन सब क्षेत्रों में सफलता हासिल करती हैं जो काफ़ी समय तक मर्दों के क्षेत्र ही जाने जाते थे। जैसे डाक्टर, वकील, वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ, इंजीनियर, कलाकार, पाइलट, बिज़नेस डाईरेक्टर, यहां तक कि पर्वतारोही भी।

असुरक्षा की भावना व संकुचित विकास के कारण औरतें एक दूसरे की मदद के बजाए एक दूसरे की आलोचना, चरित्र-हनन और अपमान करने को तैयार रहती हैं। औरतें वही धार्मिक मापदंड इस्तेमाल करती हैं जो मर्दों ने उन्हें सिखाया है। 1987 में राजस्थान में जब रूपकुंवर की हत्या सती के नाम पर हुई तो राजपूत औरतों ने भी पुरुषों के साथ उसके समर्थन में जलूस निकाला। इसके लिए बहुत सी पर्दे में रहने वाली राजपूत औरतें सड़कों पर निकल आईं।

धार्मिक गुलामी, आर्थिक गुलामी

औरतों की आर्थिक गुलामी का खात्मा सबसे खास कदम है। इसी से सामाजिक और राजनीतिक चेतना आएगी। जब तक जागरूकता नहीं आएगी धार्मिक गुलामी कायम रहेगी। देखा गया है कि किसी भी सामाजिक बदलाव में सांस्कृतिक और मानसिक बदलाव सबसे बाद में आता है। ज़िंदगी के मुख्य फैसले अपने हाथ में न होने की वजह से औरतें पूजा-पाठ का सहारा लेती हैं। पुत्र-रत्न की प्राप्ति के लिए पढ़ेलिखे स्त्री-पुरुष भी क्या-क्या धार्मिक अनुष्ठान नहीं करते? विज्ञान की खोजों के बावजूद अभी भी हम बहुत सी चीज़ों के बारे में अज्ञानी हैं।

एकजुट होकर लड़ना होगा

धर्म का विरोध या धर्म के खिलाफ़ बोलने से कोई फायदा नहीं होगा। हमें समझना होगा कि औरतें क्यों ढोंग और रूढ़ियों में फंसी हैं। यह लक्षण है, रोग नहीं, हमें रोग को मिटाने की कोशिश करनी है। आर्थिक-सामाजिक गुलामी, अज्ञानता, अपनी ज़िंदगी व भविष्य पर नियंत्रण न होना, अपने चरित्र व स्वभाव के विकास के उचित मौके न मिलना, इन सब सामाजिक बीमारियों से लड़ना होगा। □